कॉकरोच संघर्ष करना सीख गए हैं

पंद्रहवाँ एशिया न्यूज़लेटर

प्यारे दोस्तो,

ट्राईकॉन्टिनेंटल एशिया की ओर से अभिवादन

इस साल गर्मियों में, दिल्ली की सड़कों पर छात्रों ने कॉकरोच के मुखौटे पहनकर विरोध प्रदर्शन किए। ये मुखौटे भारत के मुख्य न्यायाधीश सूर्यकांत के उस बयान के खिलाफ एक प्रतिक्रिया थे, जिसमें उन्होंने देश के बेरोज़गार युवाओं को 'कॉकरोच' कहा था। देश के युवाओं ने इस अपमानजनक टिप्पणी को एक नए राजनीतिक प्रतीक में बदलते हुए अपने आंदोलन का नाम '**कॉकरोच जनता पार्टी**' रख लिया। मेडिकल प्रवेश परीक्षा (NEET) का पेपर लीक होने के बाद छात्रों द्वारा आत्महत्या करने की कई घटनाएं सामने आईं, जिसके बाद जाने-माने शिक्षक व कार्यकर्ता सोनम वांगचुक 26 दिनों की लंबी भूख हड़ताल पर बैठ गए। इन तमाम घटनाओं का अंत **25 जुलाई** को केंद्रीय शिक्षा मंत्री धर्मेंद्र प्रधान के इस्तीफे के साथ हुआ। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के पिछले बारह साल के कार्यकाल में यह किसी कैबिनेट मंत्री का पहला ऐसा

इस्तीफा है जो भारी दबाव में आकर देना पड़ा।

मुख्यधारा के मीडिया ने इन सभी घटनाओं को 'जेन ज़ी' (Gen Z) के सरल व सतही चश्मे से देखा। लेकिन असलियत यह है कि ये 'कॉकरोच' कोई ख़ास पीढ़ी नहीं, बल्कि समाज का वह तबका हैं जिसे मौजूदा आर्थिक व्यवस्था 'इस्तेमाल करो और फेंको' की नज़र से देखती है। वे आबादी का अतिरिक्त हिस्सा हैं, जो व्यवस्था के लिए डिस्पोज़ेबल हैं – क्योंकि एक रिक्त स्थान भरने के लिए हज़ारों लाइन में हैं। दिल्ली की सड़कों पर उतरे ये युवा अपनी उम्र के कारण नहीं लड़ रहे थे, बल्कि वे उस सामाजिक-आर्थिक ढांचे के खिलाफ बगावत कर रहे थे जो उन्हें गरिमापूर्ण जीवन देने में नाकामयाब रहा है। साल 2022 के आँकड़ों के अनुसार भारत के स्नातकों (ग्रैजूएशन कर चुके युवाओं) में बेरोज़गारी दर **29 प्रतिशत** है। और कभी स्कूल न गए युवाओं की तुलना में कॉलेज से ग्रैजूएट युवा नौ प्रतिशत ज़्यादा बेरोज़गार हैं। यानी भारत में युवा जितनी ऊँची डिग्रियाँ पाता जाता है, उतनी ही उसके बेरोज़गार होने की आशंका बढ़ती जाती है। बतौर 'ट्राइकॉन्टिनेंटल : सामाजिक शोध संस्थान' हमारा मानना है कि यह संघर्ष दो पीढ़ियों के बीच का टकराव नहीं, बल्कि एक स्पष्ट **वर्ग संघर्ष** है।

श्रीलंका से लेकर नेपाल तक, पूरे दक्षिण-एशियाई क्षेत्र में कमोबेश एक जैसी ही परिस्थितियां बनी हुई हैं। लोगों का सच्चा रोष हर तरफ दिखाई दे रहा है, लेकिन इस ग़ुस्से से क्या बदलाव होगा यह इस बात पर निर्भर करता है कि इस आक्रोश को नेतृत्व देने की सांगठनिक शक्ति किन ताक़तों के पास हैं।

के. पी. रेजी (भारत), मैरी हैड ए लिटिल लैम्ब (मैरी का मेमना), 2020.

एक ही आक्रोश के चार रूप

मार्च 2022 में, श्रीलंका ने अपने आधुनिक इतिहास का सबसे भयंकर आर्थिक संकट देखा ; देश में पेट्रोल-डीज़ल, दवाइयों और खाने-पीने की चीज़ों की भारी कमी हो गई थी। अनौपचारिक क्षेत्र के मज़दूरों ने जो विरोध प्रदर्शन शुरू किए उनमें धीरे-धीरे मध्यम वर्ग, छात्र व ट्रेड यूनियनें भी शामिल होती गईं। संकट के कारण श्रीलंका ने पहली बार अपने विदेशी कर्ज का भुगतान करने में असमर्थता (डिफ़ॉल्ट) जताई। वहीं जनता के आक्रोश को देख राष्ट्रपति गोटबाया राजपक्षे को इस्तीफा देना पड़ा। रानिल विक्रमसिंघे ने अंतरिम राष्ट्रपति के रूप में देश को अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (आईएमएफ़) के दरवाजे पर ला खड़ा किया : कर्ज-दाताओं का पैसा चुकाने के नाम पर देश पर ऐसे कठोर आर्थिक उपाय थोपे दिए गए, कि गरीबी की दर दोगुनी हो गई और देश की आर्थिक संप्रभुता तबाह हो गई। कुल कर्ज का लगभग अस्सी प्रतिशत हिस्सा चीन नहीं पश्चिमी बैंकों व बॉन्ड धारकों पर बकाया था। यानी जो संकट पश्चिमी वित्तीय ताकतों ने पैदा किया, उसके समधान का जो रास्ता निकाला गया, उसने फिर उन्हीं ताकतों व संस्थानों को मज़बूत किया। दो साल बाद, जनता के आक्रोश को '**नेशनल पीपल्स पावर**' और उसके राष्ट्रपति पद के उम्मीदवार अनुरा कुमारा दिसानायके के रूप में एक बेहतर मंच मिला। हालाँकि, नई सरकार भी वो आईएमएफ़ **कार्यक्रम** चला रही है, जिसे विक्रमसिंघे ने स्वीकार किया था। राजनीतिक सत्ता आर्थिक सत्ता में नहीं बदल पाई।

जुलाई 2025 में, बांग्लादेश के छात्र और मज़दूर सड़कों पर उतर आए थे। युवा कई मुद्दों को लेकर आक्रोशित थे : स्वतंत्रता सेनानियों के वंशजों के लिए सरकारी नौकरियों में एक तिहाई आरक्षण, स्नातकों के बीच व्यापक बेरोज़गारी, खाद्य पदार्थों की महंगाई व अवामी लीग का पंद्रह साल का शासनकाल। प्रशासन ने इस आंदोलन को दबाने के लिए सैकड़ों लोगों को मार डाला। आक्रोश थमा नहीं और 5 अगस्त 2024 को प्रधानमंत्री शेख हसीना को देश छोड़कर भारत **भागना** पड़ा। लेकिन अपने जायज़ विद्रोह का फल जनता को नहीं मिला। वाशिंगटन के साथ हसीना का लंबा **टकराव** रहा है, और बांग्लादेश को लेकर हिंद-प्रशांत क्षेत्र में भू-राजनीतिक खींचतान पूरी तरह **सच** है। हसीना के बाद सत्ता माइक्रोक्रेडिट (सूक्ष्म ऋण) के जनक मोहम्मद यूनुस के नेतृत्व में एक **विशेषज्ञ वर्ग** के हाथ में चली गई। इसके बाद फरवरी 2026 में हुए चुनावों में दक्षिणपंथी बांग्लादेश नेशनलिस्ट पार्टी (बीएनपी) ने प्रचंड **जीत** हासिल की। कट्टरपंथी जमात-ए-इस्लामी को मुख्य विपक्षी दल के रूप में दोबारा मुख्यधारा में खड़ा कर दिया गया, जबकि अवामी लीग को चुनावी मैदान से पूरी तरह बाहर कर दिया गया। जिन महिला **गारमेंट वर्करों** की बदौलत यह जीत संभव हुई थी, उन्हें और संगठित वामपंथी ताकतों को पूरी तरह हाशिये पर धकेल दिया गया। जनता ने अपने सच्चे आक्रोश और जायज मांगों के साथ आवाज उठाई थी, लेकिन अंततः सत्ता पर प्रतिक्रियावादी ताकतों और उनके विदेशी संरक्षकों ने कब्जा कर लिया।

गिगी स्कारिया (भारत), रिंगा रिंगा रोज़ेज़, 2018

सितंबर 2025 में, नेपाल सरकार ने 26 सोशल मीडिया प्लेटफॉर्मों पर **पाबंदी** लगा दी, इसके बाद देश के युवा सड़कों पर उतर आए। 8 सितंबर को पुलिस की गोलीबारी में 19 प्रदर्शनकारियों की मौत हो गई, और आने वाले दिनों में यह आंकड़ा सत्तर के पार पहुँच गया। ग़ुस्से से बेक़ाबू भीड़ ने संसद भवन के साथ-साथ सत्ताधारी दलों (सीपीएन-यूएमएल और नेपाली कांग्रेस) तथा अन्य पारंपरिक पार्टियों के दफ्तरों को **जलाकर** खाक कर दिया। इन दलों के बड़े नेताओं के रिहायशी मकानों को भी नहीं बख्शा गया और उन्हें भी आग के हवाले कर दिया गया। हालात बिगड़ते देख प्रधानमंत्री के.पी. शर्मा ओली को आखिरकार अपने पद से इस्तीफा देना पड़ा। नेपाल की मौजूदा स्थिति यह है कि वह पूरी तरह अपने कामगारों के विदेश जाने पर निर्भर है —यहाँ प्रत्येक पाँच में से एक युवा **बेरोज़गार** है, हर रोज तीन हजार लोग रोजी-रोटी की तलाश में देश छोड़कर जा रहे हैं, और विदेश से आने वाला पैसा (रेमिटेंस) देश की कुल जीडीपी का एक चौथाई हिस्सा है। राजनीतिक अभिजात वर्ग के बच्चों के स्पष्ट रूप से दिखाई देने वाले अकूत धन का मज़ाक उड़ाने वाले 'नेपो किड' **मीम** महज़ एक सांस्कृतिक जंग नहीं थी, बल्कि यह वर्ग संघर्ष का ही एक रूप था। लेकिन एक मजबूत नेतृत्व और संगठन के अभाव में युवाओं का गुस्सा दक्षिणपंथ की तरफ झुक गया। इस सियासी उथल-पुथल के बीच नेपाल के सेना प्रमुख 'किंगमेकर' की भूमिका में आ गए निभाई और सत्ता के हस्तांतरण की पूरी **पटकथा लिखी**। मार्च 2026 में हुए **चुनावों** में रैपर बालेन्द्र शाह की '**राष्ट्रीय स्वतंत्र पार्टी**' सत्ता में आ गई। इस चुनाव में वामपंथी दलों का कुल वोट प्रतिशत लगभग 40 से गिरकर सीधे 21 प्रतिशत पर आ गया। संसद भवन को जला देने वाले इस विद्रोह से दक्षिणपंथी ताकतों ने सत्ता में आने का रास्ता बना लिया।

अमीन खलील (भारत), द केज ऑफ़ पोइग्नेंट इवोल्यूशन (मार्मिक उत्क्रांति का पिंजरा), बिना तारीख़।

स्वरूप नया है ; पर काम पुराना

इन सभी विद्रोहों में कुछ वाकई नया हो रहा है। जैसे नेपाल के प्रदर्शनकारियों ने सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म डिस्कॉर्ड (सरकार द्वारा प्रतिबंधित प्लेटफॉर्मों में से एक) पर ही अपने अंतरिम प्रधानमंत्री का **चुनाव** कर डाला। यह संगठनात्मक ढांचा विकेंद्रीकृत, तेज़ और वैचारिक रूप से 'नेताविहीन' है। यह इतना ताकतवर हो सकता है कि महज एक हफ्ते के भीतर किसी सरकार को उखाड़ फेंके। लेकिन एक शासक के जाने और नया शासन शुरू होने के बाद, ऐसे बिना संगठनात्मक ढांचे

वाले आंदोलन के पास, मोर्चा संभालने के लिए कोई संस्थागत तंत्र नहीं बचता। श्रीलंका में विदेशी कर्ज-दाताओं और उनके घरेलू सहयोगियों ने मोर्चे की बाग-डोर अपने हाथ कर ली। नेपाल में पहले सेना ने कमान संभाली और फिर सत्ता दक्षिणपंथ के हाथ आ गई। बांग्लादेश में पुरानी पार्टियों और कट्टरपंथी इस्लामवादियों ने मोर्चा अपने पक्ष में कर लिया। सड़कों पर हासिल होने वाली ऐसी कोई भी जीत तब तक एक खोखली और महँगी ही साबित होगी, जब तक वह किसी स्पष्ट वैचारिक और संगठनात्मक कार्यक्रम का रूप नहीं ले लेती।

भारत का संघर्ष अपने पड़ोसियों जितनी परिपक्वता तक नहीं पहुँचा है। सरकार को दबाव में आकर अपना एक मंत्री ज़रूर गँवाना पड़ा, पर वह सरकार आज भी सत्ता में काबिज है। जनता का ध्यान असल और बुनियादी मुद्दों से भटकाने के लिए वह सांप्रदायिक भावनाओं को भड़काने और अल्पसंख्यक समुदायों को मोहरा बनाने का काम जारी रखेगी। चूंकि पेपर लीक और बेरोज़गारी ऐसे मुद्दे हैं जो पहचान की सीमाओं से परे सभी को प्रभावित करते हैं, इसलिए राज्य मज़दूर वर्ग को सांप्रदायिक आधार पर विभाजित करने की कोशिश करेगा। इसलिए, एकता एक आवश्यक रणनीति भी है और आगे के लिए एक अहम काम भी।

इसी लिए संगठन की ज़रूरत होती है। स्वत : स्फूर्त फूटा आक्रोश किसी शासक को हटा सकता है, लेकिन केवल संगठित मज़दूर और छात्र ही इससे आगे का रास्ता दिखा सकते हैं। आंदोलन को शुरुआती (क्षण-भंगुर) जीत से आगे ले जाने के लिए ट्रेड यूनियनों, छात्र संगठनों, किसान सभाओं और राजनीतिक पार्टी जैसे माध्यमों का होना आज भी अनिवार्य है। कॉकरोच संघर्ष करना सीख गए हैं; उन्हें अब खुद को संगठित करना और शासन चलाना भी सीखना होगा।

सस्नेह,

अतुल चंद्र

[illegible]